भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-2, अंक-8	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-15.00
शनिवार, 12 अगस्त' 78	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

अहिंसयज्ञ प्रस्तोता

सहजानन्दस्वामी ने जो भगीरथ कार्य किये है, इसका वर्णन भी सम्पूर्णतया करना असम्भव है। अपना अवतारकार्य इन्होंने केवल तीन दशक (30 साल) किया है, किन्तु इतने अल्प समय में इन्होंने गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ की प्रजा का नैतिक और धार्मिक उत्थान करके अभ्युदय किया। जीवन की जड़ में जो असंख्य सामाजिक और धार्मिक कुत्सित रूढ़ियां थी, जो जडता थी उनको उन्होंने हठात् बड़े पैमाने पर हटा दी। क्या था इनके पास? दृढ संकल्पशक्ति और उनका तज्जन्य अप्रतिम प्रभाव। लाखों की प्रजा को उन्होंने स्पर्श किया, उनके मानस को स्पर्श किया और हृदयांधकार दूर किया और प्रोज्ज्वल प्रकाशद्युति को स्थिर किया। सबसे बड़ी शक्ति 'अभय' प्रजा को प्रदान किया। विश्व के अनेक सामाजिक सुधारकों ने और धर्मोपदेशकों ने इस दिशा में कार्य किया है, इसमें सहजानंदस्वामी का कार्य बेजोड है।

महावीर स्वामी ने आज से 2000 वर्ष पूर्व अहिंसा धर्म का प्रबोधन किया था। इसके पश्चात् इ. स. की 14वीं शताब्दी में स्वामी रामानंद ने अहिंसा धर्म को प्रमुखता दी। किन्तु 14वीं शती से 18वीं शती में आते हुए अहिंसा धर्म नष्ट हो चुका था। मनुष्य मनुष्य को जोड़नेवाला, राष्ट्र राष्ट्र को जोड़ने वाला, विश्वशान्ति और विश्वमांगल्य को लानेवाला-संक्षेप में व्यष्टि और समष्टि का उद्धार करने वाला अहिंसाधर्म सहजानंदस्वामी ने पुनः प्रस्थापित किया।

'शिक्षापत्री' में सहजानंदस्वामी ने स्पष्ट लिखा है-

कस्यापि प्राणिनो हिंसा नैव कार्यऽत्र मामकैः।

और,

देवतापितृ यागार्थप्यजादेश्च हिंसनम्।

न कर्तव्यमहिंसैव धर्मः प्रोक्तोऽस्ति यन्महान्।12।

देवता और पितृ के यजन के लिये भी बकरे (मृग, शश, मच्छी) आदि किसी भी जीव की हिंसा नहीं करना, क्योंकि अहिंसा ही सर्वोच्च धर्म है ऐसा शास्त्रों में बताया गया है।

और देखिये-

स्त्रियां धनस्य वा प्राप्त्यै साम्राज्यस्य च वा क्वचित्
मनुष्यस्य तु कस्यापि हिंसा कार्या न सर्वथा।।13।।

स्त्री, संपत्ति और साम्राज्य की प्राप्ति के लिये भी किसी भी मनुष्य की हिंसा कभी भी नहीं करनी चाहिए।

आत्मधातस्तु तीर्थेऽपि न कर्तव्यश्च न क्रुधा।
अयोग्याचरणात् अपि विषोद्बन्धनादिना ।। 14।।

आत्महत्या के बारे में लिखते हैं कि आत्महत्या तीर्थस्थान में भी नहीं करना चाहिए। कभी हमसे अयोग्य आचरण भी हो जाय तो भी परेशान होकर, क्रोधावश होकर आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। विष खाकर, गले में फंदा लगाकर या किसी भी रीति से आत्मघात न करें।

और मांसाहार और शराब पीने के बारे में लिखते हैं।

न भक्ष्यं सर्वथा मांसं यशशिष्टमपि क्वचित्।
न पेयं च सुरामद्यमपि देव निवेदितम्।। 15।।

मांस को यज्ञशेष रूप में भी नहीं खाना चाहिए, आपत्तिकाल में भी नहीं खाना चाहिए और (तीन प्रकार की) सुरा (शराब) और (ग्यारह प्रकार का) मद्य देवता के नैवेद्य रूप में दिया जाय तो भी नहीं पीना चाहिए। अपने अंग या दूसरे के अंग के छेदन के बारे में लिखते है-

अकार्याचरणे क्वापि जाते स्वस्य परस्य वा।
अंगच्छेदो न कर्तव्यः शस्त्राद्यैश्च क्रुधापिवा।।16।।

कभी अपने से या किसी और के द्वारा अयोग्य क्रिया हो जाय तब भी या क्रोध में भी अपने या अन्य के अंग का छेदन नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार सहजानंदस्वामी ने किसी भी संयोग में किसी भी जीव की किसी भी उद्देश्य से हिंसा करने का और आत्महत्या करने का अशेष निषेध किया है। स्थूल हिंसा के अतिरिक्त इन्होंने **सूक्ष्म हिंसा** का भी अत्यन्त निषेध किया है। मन या वाणी से की गई हिंसा भी हिंसा ही है। संत भी **यदि आत्मीयता से प्रपूर्ण हृदय वाले हरिभक्तों से उनकी क्षमता से अधिक सेवा माँग माँग के उनके दिल को दुःख दें तो वह भी हिंसा ही है- यह शिक्षा सहजानंदस्वामी ने अपने संतों को दी।**

शाश्वत अहिंसा

किन्तु सबसे ऊंची अहिंसा कौन सी है? सहजानंदस्वामी इस विषय की सूक्ष्म आलोचना करते हुए एक ऐसी बात करते हैं कि उनसे पूर्व और उनके पश्चात् किसी ने ऐसी बात नहीं की है। जीव को मूल फन्दा कौन सा लगा है? जन्म और मृत्यु का। श्री शंकराचार्य ने लिखा है-

'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननीजठरे शयनम्।'

यह बार-बार जन्म लेना, बार बार मृत होना बहुत बड़ा फंदा है, बहुत बड़ा चक्र है। एक बार की मौत भी व्यक्ति को भयंकर रूप से भयावह कर देता है तो ऐसी अनेक मृत्यु अभी तो आने वाली है, क्योंकि अनेक जन्म होने वाले हैं। यह भयंकर चक्रव्यूह है, इसको काट देना और कटवा देना यह है सच्चा अहिंसा धर्म! **जन्म-मृत्यु से बद्ध जीव को शाश्वत अमृत पिला कर मुक्त करवा देना वह असली अहिंसा है-शाश्वत अहिंसा है-मूल पर्यन्तगामिनी-सच्ची अहिंसा है।** यह है सहजानंदस्वामी का मौलिक दर्शन अहिंसा के विषय में। इनको यह दर्शन ही नहीं हुआ था, इसदर्शन को इन्होंने क्रियान्वित भी किया। कैसे? अहिंसक निर्मल संतों की यावच्चन्द्र दिवाकरो परंपरा स्थापित करके! उद्देश्य यह है कि मानव जाति सर्वथा सर्वदा के लिये सुख और शान्ति प्राप्त करे। **एक और अनेक वासनाओं में निबद्ध अनेक जीव भी संसार में आते हैं तो दूसरी ओर परमात्मा की**

दिव्यता भी साकार बनकर सन्त रूप में आती है। इस प्रकार सहजानन्दस्वामी ने अपनी प्रभुता शाश्वत रूप से पृथ्वी पर प्रतिष्ठित कर दी है।

क्या था वह समय? यज्ञ में हिंसा का मूल्य था। पशुबलि और कभी कभी तो मानव बलि भी यज्ञ में धर्ममूलक हो गई थी। निर्दोषों का बलिदान लिया जाता था। कोई भी नहीं था सच्चे धर्ममार्ग को प्रशस्त करने को। ऐसे समय में अहिंसा के प्रतिपालक एवं प्राणीमात्र के प्रति कृपादृष्टि वाले सहजानंदस्वामी ने प्रवर्तमान भयंकर हिंसक धर्मप्रथा को चुनौती दी। यह एक असाधारण साहस था, असाधारण आह्वान था। महाराज के मार्ग में रूढ़ धर्मावलंबियों ने अनेक बाधाएं भी डाली किन्तु यह वीर क्रान्तिकारक धर्मपुरुष, समाजपुरुष, युगपुरुष ने प्रकाण्ड पुरुषार्थ किया और 'अहिंसा ही धर्म है' यह प्रस्थापित कर के ही इन्होंने श्वास लिया। यह परम पुरुषार्थ की, यह अप्रतिम आत्मयुद्ध की अनेक रोचक कहानियां है।

एक समय की बात है सहजानंदस्वामी भुज (कच्छ) में विराजमान थे। वहां के दिवान जगजीवन महेता ने हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ किया था। श्रीजी महाराज ने उनको उपदेश दिया कि इस हिंसामय यज्ञ को रोक दो और पूर्णरूप से अहिंसामय यज्ञ कीजिए। इस प्रकार महाराज ने बारबार समझाया पर जगजीवन ने उनकी बात नहीं मानी। अन्त में जगजीवन ने पण्डितों की सभा बुलवाई और शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में महाराज विजेता हुए।

श्रीजी महाराज ने अपने पक्ष की स्थापन इस प्रकार की थी-'वेद में हिंसायुक्त यज्ञ है, यह पश ुहिंसा के लिए नहीं है, किन्तु हिंसा की व्यापकता को सीमित करने की दृष्टि से है। वेद की दृष्टि वास्तव में उच्चतम है। वेद अहिंसा को ही परम धर्म के रूप में मान्य करता है, अतः यज्ञों में जो हिंसा होती है उसको नष्ट करने की वेद की दृष्टि है। यज्ञ अहिंसा के परम आदर्श को लक्ष में रखकर करने चाहिए। जो हिंसायुक्त यज्ञ करतें है वे शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करते है और मलेच्छों से अधिक अच्छे नहीं है.....'

शास्त्रार्थ में इन दलीलों के आधार पर सहजानंदस्वामी की जीत हुई तब जगजीवन महेता को अपने यज्ञ की समाप्ति करनी पड़ी। किन्तु इनके मन में द्वेष रह गया। हालांकी जगजीवन की धर्मपत्नी प्रभावती बड़ी भक्तन थी। जब महाराज भुज में सुन्दरजी भाई के वहां आते थे तब परिणाम की कुछ परवाह किये बिना वह महाराज की सेवा करती थी। -क्रमशः

★ ★

श्रावणी पूर्णिमा
रक्षाबन्धन पर्व

श्रावणी पूर्णिमा को हम रक्षाबन्धन पर्व के रूप में मनाते आ रहे हैं। रक्षा (Protection), रक्षित जीवन (Security of life) सब कोई चाहते हैं। पांच हजार साल पूर्व भगवान श्री कृष्ण ने गीता में निश्चयात्मिका वाणी द्वारा हमें अभयदान दिया है-

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहम् त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

इसके अतिरिक्त, श्रीकृष्ण भगवान ने वचन दिये है-

'न मे भक्तः प्रणश्यति।'

-मेरे भक्त का (कभी) विनाश नहीं होता है।

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

-इस धर्म का थोड़ा भी पालन कीजिये, आप महान से महान भय से मुक्त हो जायेंगे।

इस प्रकार उन्होंने अपने आश्रय में आनेवाले

को निर्भय और निश्चिंत कर दिये हैं।

ईसा मसीह ने भी कहा था-

'आपकी सब चिन्ताएँ और आपके सब कष्ट मुझे दे दीजिए। मैं उनको उठा लूंगा।

महाप्रभु स्वामिनारायण ने भी वचनामृत गढ़डा प्र. 72 और जेतलपुर 5 में ऐसे ही आशीर्वाद दिये है-

'भगवान के जिस भक्त को भगवान की माहात्म्य निश्चित रूप से हो और जो भक्त सन्त और सत्संगी के माहात्म्य को जानता है उस भक्त का कर्म यदि कठिन हो और काल भी कठिन हो तब भी उसको भक्ति का असाधारण संबल प्राप्त होता है; परिणामस्वरूप काल और कर्म दोनों मिलकर भी उसका कुछ बिगाड नहीं सकते। किन्तु जिसको भगवान और भगवान के सन्त में निष्ठा नहीं है इसका भगवान अच्छा करना चाहे तब भी अच्छा नहीं होता है।

(वच. ग.प्र. 72)

और देखिये-

.....**आप लोग यदि हमारी बात मानेंगे तो जिस धाम से हम आये है उस धाम में आप सबको ले जायेंगे। आप यह निश्चित मानना की आपका कल्याण हो चुका है। और यदि हमारे पर भरोसा रखेंगे तो किसी भी महाकष्ट या सात सात अकाल आयेंगे तब भी हम आपकी रक्षा करेंगे। ऐसा कष्ट हो कि जिसमें से बचने की आशा भी नहीं हो उस समय उस कष्ट में से भी हम आपकी रक्षा करेंगे। यदि आप हमारे सत्संग के धर्म अच्छी तरह से पालन करेंगे, सत्संग रखेंगे तो रक्षा होगी ही। किन्तु यदि आप इस प्रकार वर्ताव नहीं रखेंगे और अगर आपके प्रारब्ध कारण महादुःख पायेंगे तो हमारी इसमें कोई लेन देन नहीं है। अर्थात् हमारा कोई जिम्मा नहीं है।**

(वच. जेत. 5)

इस प्रकार, जो भजन करता है उनके भगवान है और भगवान का आश्रय लेने से दुःख और दर्द की समाप्ति होती है यह सूचना सर्व अवतारी पुरुषों ने दी है।

किन्तु महाप्रभु स्वामिनारायण ने इससे भी आगे बढ़कर अपने भक्तों का दुःख और दर्द वे खुद उठा लेंगे ऐसा कहा है। उन्होंने अपना अवतार कार्य का प्रारंभ किया इसके पूर्व अपने गुरु रामानन्दस्वामी के पास मांग लिया था-

'हे स्वामिन् ! आपकी जो भक्ति करते है इनको तनिक भी दुःख न हो। देना है तो मुझे दे दो। मेरे रोम-रोम में कोटि बिच्छु के दंशों की वेदना हो किन्तु आपके भक्त को बिच्छु का एक छोटा सा दंश भी न हो। आपके भक्त के भाग्य में यदि भिक्षापात्र हो तो यह पात्र मुझे दे दो, किन्तु आपके भक्त अन्न या वस्त्र के अभाव में दुःखी न हो।'

अपने भक्तों के प्रति महाराज का कितना उत्कृष्ट प्रेमभाव है? इनके दुःख अपने पर लेने के लिए वे कितने उत्सुक है? यह केवल भाव नहीं है, उनकी प्रार्थना है। जब उनको अवतार कार्य दिया गया तब इन्होंने अपने गुरु के समक्ष हृदय खोल कर हमारे लिए कितना मांग लिया है? कितनी भव्य यह Partnership है? सुख की नहीं, दुःख की Partnership है ! छोटे मोटे हर संकट में वे भक्त को नहीं भूलेंगे इसकी दृढ़ प्रतीति दृढ़ निश्चय इन्होंने करवाई है। स्वयं समर्थ है यह तथ्य उनको स्पष्ट था; तदपि इन्होंने कष्ट मांगे, वेदना मांग ली। यह उनका शोख नहीं था। शहीदी का भाव नहीं था। यह थी भक्तवत्सलता, यह थी उनकी असीम करुणा !

अपने आश्रितों को उन्होंने यहां तक निर्भय कर दिया कि उन्होंने कहा है-**'आपके अन्त समय मैं स्वयं आपको लेने को आऊंगा'।** कितनी अद्‌भुत यह बात है ! अंत समय श्री स्वामिनारायण उपस्थित रहते ही

है और हमें प्रतीति करवाते है कि अब आप निश्चिंत रहना, अब आपको इस संसार में आने जाने का नहीं है। **महाप्रभु स्वामिनारायण ने इस भूमि पर आगमन किया और परमधाम की बात की इतना ही नहीं, वहाँ ले जाने के लिए स्वयं उपस्थित रहेंगे ऐसा वचन दिया।** हमें सुरक्षाकवच पहना दिया। किसी ने ऐसी प्रेमयुक्त वाणी में ऐसा नही कहा है। इन्होंने ऐसा केवल वचन ही नहीं दिया है, ऐसा किया भी है। अनेक आश्रितों को ऐसे अनुभव हो चुके हैं।

सोचिए, इह लोक और परलोक दोनों की जिम्मेदारी लेने वाले ऐसे माता-पिता कहां से मिलेंगे ! मानवसभ्यता के सारे इतिहास में किसी भी अवतार-पुरुष ने अपने समग्र परिवार की इतनी हद तक चिन्ता नहीं की है। ऐसे वरदान नहीं दिये हैं। अनेक धर्मो में ईश्वरीय स्मृति जाग्रत करावें ऐसे स्थान, वस्त्र, पात्र, अवशेष आदि है किन्तु एक निश्चिंत मूर्ति में या ग्रंथ में मेरा निवास रहेगा ऐसा श्रद्धापूर्ण वचन केवल महाप्रभु स्वामिनारायण ने ही कहा है और इससे भी अधिक यह सर्वोत्कृष्ट परम दिव्य ऋणचेतना गुणातीतभाव जिनमें है ऐसे संतों और भक्तों द्वारा स्वयं साकार रूप से अखण्ड प्रगट रही। आज भी गुणातीतबाग में प.पू. स्वामिश्री, प.पू.काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. महन्तस्वामी आदि साकार परम भगवत्स्वरूपों द्वारा यह चेतना ही क्रियामाण है। परमात्मा के ऐसे अखण्ड धारक संतों का अनन्याश्रय लेकर, इसमें दृढ़ निष्ठा रखकर हम अखंड संरक्षण प्राप्त करें और इस प्रकार रक्षाबंधन का यह पर्व हमारे लिए सच्ची सुरक्षा का पर्व हो-यह ही है अभीप्सा इस मंगलपर्व के दिन।

★ ★

सांख्यसम्राट प.पू. पप्पाजी

सितम्बर की पहली तारीख है समग्र गुणातीत समाज के प्राण समान प.पू. पप्पाजी का प्राकट्य दिन। गुरुहरि प.पू. योगीजी महाराज के वे परम भागवत सन्त हैं। प.पू. पप्पाजी की सेवाएं विशिष्ट है। इन्होंने सन्तों, युवकों, बहनों और गृहस्थों में परम एकान्तिकी भक्ति प्रादुर्भूत की है। यह है इनकी विशिष्टता एवं सर्वोपरिता।

ऐसा लगता है कि परमपूज्य पप्पाजी के जीवन से सांख्य की अखंड बारिश हो रही है। किन्तु प.पू. पप्पाजी का जीवन इतना सहज और स्वाभाविक है कि वे बच्चे के साथ बच्चे, छोटे के साथ छोटे बड़े के साथ बड़े लगते है। सबके वे आतामीय है किन्तु सबसे स्वतन्त्र है। साथ साथ वे सबका सर्वथा-सर्व प्रकार से पोषण कर रहे है। वे किसी के पास से न किसी प्रकार की अपेक्षा करते हैं और नाही उपेक्षा। एक ही है कार्यक्रम उनके जीवन का, और वह है-'सब की सेवा करना'। इनके हृदय में ठीक यह ही इच्छा सतत प्रगट रहती है और वे निरन्तर उसको कार्यान्वित करते आ रहे है। इसको यदि हम अपेक्षा कहे तो यह अपेक्षा इनके जीवन में है। उपेक्षा वे करते है प्रकृति के कार्य की। यह तथ्य सतत उनके जीवन में उभर आता है।

वे रहते है प्रवृत्तिशील समाज में, निरन्तर प्रवृत्ति करते है। किन्तु हृदय से निर्लिप्त है; अतः सर्वथा सर्वदा मस्ती में ही रहते हैं। इनके संकल्प विकल्प में और रहन-सहन में अखण्ड निष्काम धर्म ही दिखलाई पड़ता है।

ऐसे निष्कामी परम भागवत सन्त के चरणों में रहकर, इनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाकर हम व्यवहार करने का प्रयत्न करें और इनको प्रसन्न करें ..... फलस्वरूप हम परमात्मा के सच्चे सुपुत्र बनें-कृतकृत्य हो ऐसा संबल वे हमें प्रदान करें यह ही है उनके चरणों में हमारी प्रार्थना।

卐

TANTRA & the forgoten chapter in Indian Philosophy

...Pujya Kakaji has recently brought out a book by the name 'The Real Essence of Tantra'. It is being released today on this auspicious occassion of his 60th birthday by Shri Pageji, I am here to give you an introduction to the book.

Tantra is a way of life, a technique which enables us to understnad the meaning and singnificance of what exactly is life? What is its purpose? These are the questions that have baffled the minds of thinkers from the earlist of times. You will find in the Shwetashvatra upanishad the question the Brahmavadins ask-

किम् करणम् ब्रह्म? कुतः अस्मज्जातः? जीवाम केन? क्व च सम्प्रतिष्ठाः? अधिष्ठिताः केन?

Such questions-whence are we born? What is this life for?-these have engaged the attentions of the people from time immemorial. They have thought about it, sages have pondered about it and have arrived at various answers. These answers constitute the philosophies that have come down to us-that have been handed down to us.

One singnificant aspect of Indian philosophy has been that it is not just on arm-chair philosophy, where mere speculation goes on. But what has been speculated, what has been thought off has been translated into life. That is why we call philosophy 'दर्शन' here. It's not only a way of thought but a way of life. And Tantra translates this way of thought into life, so that the real significance of life may be understood.

In the past, attempts have been made to realise the meaning and significance of life. Man's life, man's powers have been analysed. The human body is there, the human mind is the, there is the spiritual element in us, there are various things. Now, thinkers have attempted to utilise these powers and to realise what ever is possible through these powers. Take for instance the 'Hath yogin'-for him perhaps the body is the be all and end all of life. He perfects it and he is able to accomplish many things that baffle our mind. We are not able to do them. But that is the end of it. The question still is there as Shri Shankaracharya put it in one of his excellent verses-what next?

'ततः किम्, ततः किम्'

Even the highest of them have reached the stage of realising two powers the shiva and the shakti, the Kshara and the Akshara, the purusha and the pradhana or the prakriti. They have just ended there, but they have not gone beyond it. **They have not taken life in all its comprehensiveness. But this comprehensive approach to life has been there from times immemorial. This is why the Swaminarayan people tell us and rightly tell us that there has been a forgotten chapter in this yogic tradition.** What is this forgotten chapter?

you will find in the IV Chapter of Bhagvad Gita.

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्यम्

'This yoga I propounded at the begining of the Kalpa to Vivaswan and this has been handed over, but it has been, lost.

And this yoga is the realisation of the Transcendental Entity. There is the kshara, there is the Akshara and beyond this there is also a Purushottama-

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

(Bhagvad Gita-Chapt. XV.18)

This is the greatest 'Lord Narayana' who dwells in His Akshardhama beyond everthing. **We can never be that 'Narayana'.** That is the great thing that has been propounded here. Advaita reaches to an equality and oneness. **But, beyond this there is the real Advaita-one Narayana, who has no other second.** We can go to Him, we can reach and equality of status with Him, but He is still the Transcendent. If you call the great Lord as the Transcendent how can we poor mortals be equal to Him or be one with Him? so that is not there. There is this great 'Narayana' and this Narayan has manifested Himself in this world through the brahminised saints and spirits and He has made available to us this Knowledge. This is the Comprehensive doctrine that has comedown to us. Man in his limited vision can never know all this. It is because 'Narayana' Himself in His great mercy, in His great goodness and generosity has come down to us in this world as a human being and has taken birth. This is the 'Divya Karma and the Divya Janma' of the Lord-

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः'

(Bhagvad Gita Chapt. IV,9)

This is we have to realise, that there is a 'Janma', not the mortal Janma-the yonijas that we are-this is anothor sort of Janma of the Lord Himself who comes down to us as an 'Avatar' again and again. **It is only through such an ascent of divinity that we are able to understand the comprensive element in life.** Now this book 'The Real Essence of Tantra' concentrates its attention on this, It does not decry the other partial approaches to divinity. That is against the spirit of the Gita itself-

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।

(Bhagvad Gita Chapt. VII, 21)

Krishna Says-No, 'this is a wrong path, this is a correct path'-such a thing is never said in our philosophy, because न बुद्धिभेदं जनयेत्। The moment you tell people' that is wrong' they will again start asking, 'why should not the thing that you are saying also be wrong?' Therefore, don't implant in them this doubting spirit. Whatever approaches to Reality are there, they are good but lead them on from that.

Now, it is this particular comprehensive doctrine which has been propounded by the Lord and it has been handed down to us. This has been revived by Swaminarayana and is the basis of this 'Real essence of Tantra.' In

this 'Real essence of Tantra' the ultimate experience is narrated through a number of petals. The chapters, of the book have been very Significantly entitled 'The petal' because Lord is there in our heart 'हृदयकमल मध्ये' This Lod has to become manifestd to us. He is hidden there, Wo do not know Him. It is only when we know that the Lord is there, that He is the guide, that He is the supreme controller of everything, it is because of Him that everything here exists and that there is a great divine plan and in this divine plan we have a place, we have a function, then we are able to realise this divine plan-the divine function. Further, when we realise where exactly we fit into it, how from the status in which we exist we are to evolve ourselves to the highest that we are capable of, then only real realisation comes to us. As long as men goes on thinking I am the doer- कर्ता अहम इति मन्यते, as long as he has this false notion, he will not be able to realise anything in this world. But, the moment he let the Divine play through Him, when he becomes a true instrument- निमित्तमात्रं भव सव्यसाथिन् the moment he forgets himself, the moment he puts himself in line with that particular divine plan he evolves effortlessly and that too without any of the difficulties that dog the path. In the book these have been exquisitely pointed out.

Why is it that people following other paths have got troubled, have stumbled, have fell, have not been able to make progress or have taken to wrong path? Take for example the case of Dr. Falstis. He was great divine man,but this divine person was attracted by the magical art. He became a student of a magical teacher and then he fell from the great heights of spirituality and ultimately he was thrown to hell. This is the Christian account of it. There he says-'one drop of Christ's blood would have saved me, Because he did not have the faith, he did not put himself fully and totally in the Lord's direction, he ultimately fell. Now all these dangers that beset the other paths are removed here, because in all childlike innocence trust and faith you obey the Master-youobey the Lord and the Lord is there to guide you, to take you to the path which you have to reach.

Well, I may go on saying more about it. After all its a small introduction. This is a book which you have to read. Each one of the petals is very significantly entitled. There is first, 'The Real essence of Tantra'. then comes the 'Traditional Tantras'-an account of it has been given, their good and other drawbacks have been pointed out, where perhaps the sadhakas are likely to err has been pointed out. And then follows the account of' Cosmic evolution and creation'-the whole picture of the universe against the background of which we have to understand human endeavors and human life. Then is the cahpter on 'Mantrashakti'. Like this are petals after petals-seven significant petals (the mystical number seven is there) and through these seven petals the हृदयकमल

in us itself blossoms.

Well, all that I can say is utilising what Sanjaya himself at the and of the Gita Said-'after I thought of the great form of the Lord-**तच्च संस्मृत्य सस्मृत्य रूपम-त्यदभूतं हरेः-**

like that, here is a book which as you go on reading again and again will make you wonder struck-

विस्मयो में महान्राजहृष्यामि च पुनः पुनः।।

(Bhagvad Gita Chapt. XVIII, 77)

I hope the readers of the book will have an occassion to say-

हृष्यामि च पुनः पुनः।

I shall delight, I do delight in reading it over and over again. **Pujya Kakaji has done a great service to us in bringing out this book-a book which corrects the misrepresentations of Indian philosophy.** It also gives due warnings to the probable dangers in other Tantric paths and fills in the gap or bridges the gap by introducing the forgotten chapter in Indian philosophy of Akshar Purushottama yoga. With these word I conclude.

An introductory speach of

Shri. KASHYAPJEE

On the occasion of the release of the book 'The Real essence of Tantra' in the diamond Jubilee celebration of pujya Shri Dadukakaji

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	18.8.78	शुक्रवार	श्रावणी पूर्णिमा, रक्षाबंधन
2.	दि.	25.8.78	शुक्रवार	श्री कृष्ण जन्माष्टमी, व्रत
3.	दि.	26.8.78	शनिवार	श्री गोकुलोत्सव, गोकुलाष्टमी व्रत- वैष्णव मतानुसार
4.	दि.	29.8.78	मंगलवार	अजा एकादशी, उपवास
5.	दि.	1.9.78	शुक्रवार	प.पू. पप्पाजी का प्राकाट्यदिन
6.	दि.	5.9.78	मंगलवार	हरितालिका (केवडा) तीज
7.	दि.	7.9.78	गुरुवार	ऋषिपंचमी
8.	दि.	11.9.78	सोमवार	नवमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
9.	दि.	13.9.78	बुधवार	परिवर्तिनी जलझीलनी एकादशी, निर्जला व्रत

A BOON TO TANTRIC SADHAKAS
A SAFEGUARD AGAINST EVIL FORCES
THE REAL ESSENCE OF TANTRA

by Pujya DADUKAKA

Publishers : YOGI DIVINE SOCIETY

6/D, Sonawala Buildings, Tardeo, Bombay-400 007 Tel : 379325

A-103, ASHOK VIHAR-III NEAR LAXMIBAI COLLEGE

DELHI-110 052. TEL : 518838.

Original Psycho-Spiritual approach

Based on Transcendental Love

Foreword by : Shr V.S. Pageji Former Speaker, Maharashtra

Price; Rs. 60/-

- The book will clear out much of the misunderstandings regarding Tantric Traditions and give inspiration to Tantric Sadhakas.

_ Hon. B.D. Jatti,
Vice President of India

- A rare publication that gives you the real essence of Tantra base on Suddha Tattwa.

-Maharaj Shree of Pitamber Peeth, Datia

- My faith has been strengthened with an inspired vision, a new awakening and enlightenment.

-Ananda Swami.

- This is a treatise on what according a Daduji, should be the short cut to self realisation.....I appreciate Daduji's vision towards all sects, religions and humans.

-Swami Muktananda, Ganeshpuri

- A rich harvest of spiritual knowledge and discipline which will give solace to the troubled and agitated mind.

-Shri V.S. Page, Former speaker, Maharastra.

- He has ably related the Akshar-Purushottam Doctrine with absolute knowledge. Indeed a positive contribution by Dadukaka that will benefit readers both in the East and West.

-Shri G.S. Pohekar

Publshed by: Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society,
A-103,, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052. India. Tel.: 518838
Printed at Thakkar printing press, 2588, Bast Punjabian, Subzi mandi, Delhi-110 007 Phone : 524058